महादेवी का काव्य चिन्तन

ब्रजरतन जोशी

सह–अध्येता, आई.आई.ए.एस,

शिमला

25.11.2024

1. उन्जुर मा क़ाल–ला तन्जुर मनक़ाल

देखो कि क्या कहा, मत देखो कि किसने कहा।

(एक अरबी कहावत)

जीवन के अवसान समीप होते ही दीप जलने लगते हैं, तो समस्त कण–कण दीपक और तृण–तृण वर्तिका बन जाते हैं और नए पल में एक नई ज्योति झिलमिलाने लगती है। कितना आशावादी और आनंदवादी दर्शन है जिसे अनेक बार लोगों ने दुःख और उदासीनता में देखने की भूल की।

(महादेवी वर्मा अभिनंदन ग्रंथ, शक्ति त्रिवेदी)

आज हिन्दी अलोचना समृद्ध एवं सम्पन्न विधा है। इसका विधिवत आरम्भ आधुनिक काल में खड़ी बोली से हुआ। अब तक विकसित हुई हिन्दी आलोचना की प्रकृति का सम्यक् निरीक्षण करते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी आलोचना अपनी संरचना में व्यवहारिक तो है, पर साहित्यिक सिद्धान्तों का भी उपयोग इस में देखा जा सकता है। हाँ, शास्त्र चिन्तन के विकास में अभी उसकी राहें जरा कठिन है।

हिन्दी की कवि आलोचना के चुनिन्दा कवियों ने अपने काव्य चिन्तन पर अपने को एकाग्र करने की कोशिश की। यह कार्य प्रसाद से आरंभ होकर समकालीन काव्य परिदृश्य के कई–कई समर्थ कवि–आलोचकों के रचना संसार में देखा जा सकता है।

लेकिन विधाओं के अन्तर्लोक के सैद्धान्तिक दरवाजों को पूरी तरह खोलकर अन्दर के दृश्य को देखने–दिखाने की कोशिशें अभी तक जारी है। दृष्टा और दृश्य के बीच की खाई को पाटा जाना अभी शेष है। हिन्दी आलोचना के विकास के लिए आवश्यक है कि आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य चिन्तन को जाने, जाँचे, परखें।

बीज शब्द

इस शोधपत्र के बीज शब्द निम्नानुसार हैं –

काव्य, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य तत्त्व, काव्यात्मा, काव्य रूप, काव्य–वर्ण्य।

शोधविधि –

इस शोध पत्र में शोध की दो पद्धतियों यथा– सर्वेक्षण, पाठ विश्लेषण पद्धति के सहारे कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यचिन्तन के सूत्रीकरण कार्य को सम्पन्न किया गया है। शोध पत्र के आए समस्त सन्दर्भ एम.एल.ए 9th वर्सन अनुसार हैं।

मूल विषय

महादेवी पर लिखते हुए हिन्दी के अपनी तरह के अद्‌भुत अपूर्व कवि निराला ने कहा है कि *महादेवी यानी स्फूर्ति, चेतना और रचना प्रक्रिया की कल्याणी*।[1] छायावादी काव्य में महादेवी उन कवियों में अग्रणी हैं कि जिनके आँसू आत्मवेदना के नहीं बल्कि भीतर की करुणा से निकले हैं। इसीलिए वे अपने काव्य में कहती हैं कि–

जाग तुझको दूर जाना

इसमें जो पद दूरी है वह भौगोलिक नहीं है वरन् एक महान लक्ष्य है जिसे वे अपने संयत विद्रोह और सार्थक अभिव्यक्ति के रचनात्मक पराक्रम के माध्यम से अर्जित करना चाहती है। उनका काव्य संसार सुथरा है और आत्मा संस्कारित।

बहुत–से आलोचकों ने काव्य चिन्तन एवं परिपक्वता की दृष्टि से उनके रचनाकर्म को उन्हीं समकालीन प्रसाद, पंत, निराला के समकक्ष नहीं माना है जबकि यह निरीक्षण पूरी तरह न्याय संगत नहीं है। जबकि उनकी परिपक्वता का स्तर यह है कि उन्होंने ज्ञान के विकास में आवश्यक तत्त्व असहमति को भारतीय संवाद परम्परा के आलोक में पूरी तरह से अपनाया ही नहीं, वे स्वयं में शांत भाव में स्थित होकर ही अपने पथ पर आगे भी बढ़ीं हैं।

उन्होंने लिखा है कि *हम संसार भर की विचारधाराओं में जीवन के मापदण्ड खोजते–खोजते जीवन ही खो चुके हैं*।[2]

शमशेर बहादुर सिंह की एक काव्य पंक्ति में कहूँ कि *वे समय की एक लम्बी आह (मौन लम्बी आह) है।* लिखना या सृजन उनके लिए सुखकारी है। बिना लिखे वे स्वयं को अभाव में पाती हैं।

कालक्रम की दृष्टि से देखें, तो महादेवी वर्मा ने पहले काव्य फिर कथेतर गद्य लिखा। काव्य चिन्तन के विविध पक्षों को लेकर उन्होंने बहुत व्यवस्थित रूप से कोई कार्य या लेखन तो उन्होंने नहीं किया, पर हिन्दी आलोचना के सम्पयक् विकास एवं उत्कर्ष में यह प्रायः देखने में आया है कि बड़े–बड़े रचनाकार अपने लेखन के विविध चरण और रूपों में अपने काव्य चिन्तन के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र छोड़ते चलते हैं। उनके समग्र रचना संसार से गुजरने पर हम पाते हैं कि उनमें उपदेशात्मकता, आत्ममंथन, अतिरिक्त उदारता के साथ रचनाकर्म के पग–पग पर उनकी अध्ययनशीलता, चिंतरनपरक प्रौढ़ता और मौलिक सूझबूझ देखते ही बनती है। रचनात्मक आत्मसंघर्ष उनके सृजन केन्द्र में है। इसलिए ही उनकी अनुभूति के केन्द्र में *आँसू* नहीं *आग* है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय हमारे आलोचक आचार्य शुक्लजी ने पंतजी पर चौदह पृष्ठ खर्च किए हैं लेकिन महादेवी पर आधा पृष्ठ ही, बावजूद उनकी कर्मठता और सृजनशीलता के कारण हिन्दी के मन सदन में वे पूरी गरिमा और गौरव के साथ विराजमान हैं।

महादेवी वर्मा मानव मन के अन्तरतम की गहरी अन्वेषिका हैं। उनका संवेदनात्मक अन्वेषण व्यक्तिनिष्ठ नहीं है। वे स्वयं के बाह्य, स्थितियों,

परिस्थितियों, परिवेश, सांबंधिक प्रणालियों आदि की राह में अपनी तलाश को आगे बढ़ातीं हैं। इसलिए उनका ध्यान घटनाओं के बजाय घटित पर अधिक है। सामान्य एवं दैनिन्दन जीवन क्रिया–व्यापार पर उनकी नजर अचूक और पैनी है। उनके रचना संसार के सम्बन्ध में उनका अन्तर्जगत केवल दार्शनिकता और मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही प्रतिष्ठ नहीं है वरन् उनके संदर्भ जीते–जागते जीवन या कह लें वास्तविकता से गहरे जुड़े हैं। हमारी ही तरह उनका समय एवं समाज असंख्य हलचलों से भरा था। वे थामस ग्रे के इस विचार से गहरे सम्बन्ध रखती है कि *कविता वह विचार है जहाँ हम गहरे साँस लेते हैं।* यह गहरी साँस ही उनसे अपने शब्द और अभिव्यंजना में अमाप का विस्तार करने की सार्थक कोशिश का सामर्थ्य उनमें भरती है।

हम जानते हैं कि यह संसार बहुत ही सुन्दर है, पर दुनिया उतनी भयावह। समन्वय के माध्यम से वे इसका संतुलन साधती है। उनकी नज़र में यह संसार बेहोश इन्सानों का बेमतलब का आवासीय परिसर है जिसमें महादेवी की कविता अपनी प्रतिबद्धता के अखूंट सौन्दर्य अनुभव के साथ यात्रा पर है। क्योंकि समस्त द्वन्द्व व्यक्ति के भीतर होते हैं, ऐसे में उनके काव्य का प्रवाह अंदर से बाहर की ओर है। कह सकते हैं कि महादेवी के रचनाकर्म से गुजरना अपनी स्मृतियों की बुझी राख के नीचे दबी चिंगारियों की तलाश है।

महादेवी का साहित्य अस्तित्व से लेकर व्यक्तित्व तक पसरा हुआ है। उनका काव्य शरीर संवेदनशीलता, करूणा, संयम और नैतिक के योग से गठित है। यशस्वी रचनाकार गगन गिल ने चर्चित निबंध ''ऋषिका महादेवी में लिखती हैं – ''सच यह है कि महादेवी अपने जीवन में जो थीं, उससे हमेशा कुछ ज्यादा ही रही – एक कवयित्री से थोड़ी ज्यादा, एक विदुषी से थोड़ी ज्यादा, एक प्राध्यापिका से थोड़ी ज्यादा।''[3]

वे भली–भाँति जानती रहीं कि रचना के लिए भाषा की अँधेरी जड़ों तक जाना होता है और मौन की अनंत संभावनाओं के अछोर मैदान की यात्रा भी करनी होती है। एक अच्छा या श्रेष्ठ रचनाकार उस गोताखोर की तरह होता है

जो अपनी पूरी साँस साधकर नीचे उतरता है और अपनी तलाश को जिजीविषा के साथ सम्पन्न करते हुए नग–हीर के साथ लौटता है। यह जो धँसना है और नग हीर के साथ लौटना है वही रचनाकार के रचनात्मक धर्म का निर्वाह है, जिसका पालन कवयित्री महादेवी पूरी तरह से अपने सृजन विश्व में किया है।

वे इस अर्थ में भी एक अनन्य रचनाकार हैं कि वे सन्नाटे को सुन सकती थीं और मौन से संवाद भी कर सकती थीं। यह उनकी सफलता ही कही जाएगी कि अपने सम्पूर्ण सृजन में साधारण की अपूर्व मूर्त प्रतिष्ठा करती हैं जिसमें तुलसी के जड़–चेतना से लेकर मुक्तिबोध की ज्ञान संवेदना तक के समायोजन को आसानी से दृष्टिगत किया जा सकता है। उनका कवि विविध ज्ञान–अनुशासनों के आलोक में जीवन की समग्रता को पकड़ने की शानदार कोशिश करता है।

अनुभव महादेवी की अनंत प्यास है। इसलिए उनकी तलाश कभी खत्म नहीं होती। बड़े कवि की एक पहचान यह भी है कि वह हम सबके अनुभव को अपने शब्द देता है। इसीलिए किसी भी पाठक को वे शब्द अपने अनुभव की अभिव्यक्ति ही लगते हैं।

हिन्दी आलोचना, खासकर मर्दवादी हिन्दी आलोचना ने उनकी भरपूर अनदेखी की। उन्हें रहस्यवादी, वेदना एवं विरह की कवयित्री कह कर उनकी धार को कुंद करने की पूरी कोशिश की गई। क्योंकि वे *नीरभरी दुःख की बदली* थीं, सो जानती थीं कि *विस्तृत नभ का कोई कोना मेरा न कभी अपना होना है।* इसीलिए उनके समकालीन और समान काव्यधर्मा प्रसाद, पंत, निराला की तुलना में उनके लिखे पर मात्रा एवं गुणवता दोनों ही दृष्टियों से कार्य अत्यल्प हुआ। इतना ही नहीं अपने सुख्यात इतिहास में आचार्य शुक्त ने चुटकी लेते हुए लिखा है कि *पीड़ा का चस्का इतना है कि वे लिखती हैं*

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुमको ढूँढ़ेगी पीड़ा [4]

हिन्दी आलोचना के इतिहास में रामविलास शर्मा ने पहली बार महादेवी के काव्य को *स्त्री के सामाजिक यथार्थ* से जोड़ने का काम करते हैं। वे स्पष्ट

लिखते हैं कि निराला के अतिरिक्त किसी कवि में इतनी जिजीविषा नहीं। यदि मुझे उन्हीं के शब्दों में उनका परिचय देना हो, तो मैं उन्हीं इस पंक्ति से उद्धृत करूँगा—

रात के डर से दिवस की चाह का शर हूँ।[5]

इसी क्रम में विजयदेव नारायण साही छठवाँ दशक में लिखते हैं कि *निराला की डाल जब खिलना चाहती है, तो उसमें संकल्प का स्वर है और महादेवी के जितने भी फूल हैं वे एक तरल मधुर मार्दव के साथ सहज ही खिलते—झरते हैं।*[6]

महादेवी वर्मा के समस्त साहित्य या सृजनकर्म से गुजरते हुए मैं कोशिश करुंगा कि अब तक अनदेखी गई उनकी साहित्यिशास्त्रीय मान्यताओं के संसार को भली—भाँति देखा—परखा जाए। इस परिक्रमा में हम उनके काव्य, काव्य प्रेरणा, काव्यात्मा, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य तत्त्व, काव्य वर्ण्य आदि पर उनके विचारों को तो जानेंगे ही, साथ ही भाषा, विधा, सृजन प्रक्रिया को जानते—समझते चलेंगे। ये सूत्रीकरण महादेवी साहित्य की एकरेखीय पढ़त से संभव नहीं है वरन् उसके लिए वृत्ताकार पठन शैली को अपनाते हुए आगे बढ़ने की कोशिश की गई है।

काव्य

विचारधारा चाहे कोई भी हो यह प्रश्न साहित्य का शाश्वत प्रश्न है कि कविता क्या है? हर बड़ा रचनाकार इस प्रश्न से टकराता है। महादेवी अपने चर्चित निबन्ध *काव्यकला* में काव्य को एक उत्कृष्ट कला मानतीं हैं। वे कवि को हृदय और बुद्धि के संयुक्त एवं सम्पन्न रूप में देखना चाहती है। वे भी प्रसाद की तरह अनुभूति को प्रधान मानती हैं। हालांकि काव्यगत अनुभूति के सम्बन्ध में कवयित्री का दृष्टिकोण आदर्शवादी रहा है, लेकिन उसमें अतिरंजना नहीं है।

वे लिखतीं हैं कि *कवि ही नहीं प्रत्येक कलाकार को अपने व्यक्गित जीवन की गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देने वाली अनुभूतियों को भावना के साँचे में ढालना पड़ा है।*[7]

इसके अतिरिक्त वे काव्यकला में सत्य की प्रमुखता को स्पष्ट स्वीकार कर परम्परागत समस्त चिन्तन के स्वयं को अलग कर लेती हैं।

दीपशिखा की भूमिका में वे लिखती है कि *सत्य काव्य का सादृश्य है और सौन्दर्य साधन*।[8]

दीपशिखा की ही भूमिका में वे इसे और स्पष्ट करती हुई लिखती हैं कि *कला सत्य को ज्ञान के सिकता विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूमि की सरिता के तट से एक विशेष बिन्दु पर ग्रहण करती है*।[9]

इसी क्रम में वे कवि के लिए जिज्ञासा के साथ समाज एवं कलाकर्म के प्रति अनुराग के महत्त्व को भी लक्षित करती चलती है। यही कारण है कि उनकी अनुभूतियाँ तरल, सूक्ष्म, कोमलता की अभिव्यक्ति है। किसी भी श्रेष्ठ रचनाकार की पहचान अनुभूति की गहराई और विषयवस्तु के फैलाव से होती है। महादेवी अपनी काव्य यात्रा में अर्थपूर्ण अनुभूतियों के आधार पर यथार्थ का यथोचित चित्रण करते हुए आगे बढ़ती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उन्होंने अनुभूति को आत्माभिव्यक्ति का प्राण तत्त्व माना, लेकिन कल्पना, बुद्धि का निषेध नहीं किया। उनके अनुसार श्रेष्ठ काव्य में अनुभव, बौद्धिक ज्ञानप्रेरित आत्मसंस्कार और कल्पना का समुचित प्रयोग कवि की भावाभिव्यक्ति में पूर्णता लाता है।

काव्य हेतु

यहाँ हेतु के मानी है कारण। यह एक काव्यशास्त्रीय पद है। हालांकि बहुत स्पष्ट तरीके से कवयित्री ने इस पर अपने चिन्तन को व्यक्त नहीं किया है, पर उनके चिन्तन में स्थान–स्थान पर इसके संकेत मिलते रहते हैं। क्योंकि सामान्यतः विद्वजन इस पर अधिक संवेदनशील दृष्टि से देखते नहीं। इसलिए उन पर प्रायः ध्यान नहीं जा पाता।

काव्य हेतु से तात्पर्य हुआ काव्य के कारण यानी जिन कारणों से कवि प्रेरित हुआ। आज की भाषा में इसे काव्य प्रेरणा भी कहा जा रहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य हेतु के प्रश्न को लेकर संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्रतिभा,

शक्ति, व्युत्पत्ति, अभ्यास तथा समाधि पाँच हेतुओं का वर्णन मिलता है।[10] प्रतिभा के दो प्रकार मिलते हैं कारयत्रि और भावयत्रि, शक्ति से तात्पर्य है जिसके कारण कवि रचना में समर्थ होता है। व्युत्पति से तात्पर्य है बहुलता और अभ्यास यानी नियमितता द्वारा कौशल सिद्धि समाधि से तात्पर्य परम सत्य से साक्षात्कार है।

यहाँ इस तथ्य पर पर्याप्त ध्यान दिए जाने की जरूरत है कि काव्य प्रेरणा और काव्य हेतु सामान्यतः एक जैसे लगने वाले पद जरूर हैं, पर इनमें भेद है। हम प्रतिभा, व्युत्पति और अभ्यास को प्रेरणा नहीं कह सकते। क्योंकि इनका स्वरूप निर्वैयक्तिक है। हमारी संस्कृति काव्य परम्परा एवं काव्यशास्त्रीय परम्परा में कवि वस्तु का विश्लेषण मिलता है, कवि मानस का अपेक्षाकृत कम।

हमें ध्यान रहना चाहिए कि काव्य सृजन प्रक्रिया के लिए पाँच उपादान कहे जाते हैं–

1. आलोचक कीट्स और उसकी विचारसरणि के आलोचक कहते हैं कि कवि के व्यक्तित्व का काव्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इलियट कहता है कि साहित्य और आत्म की अभिव्यक्ति नहीं आत्मा से पलायन है।

2. एक अन्य वर्ग कहता है कि काव्य प्रत्यक्ष आत्माभिव्यक्ति नहीं है। क्योंकि रचना के समय कवि साधारण मनुष्य नहीं रहता।

3. तीसरा वर्ग कहता है कि सृजन प्रक्रिया में कवि का व्यक्तित्व अवश्य ही रहता है, पर उस समय उसमें साधारण मानवी व्यक्तित्व न होकर मन के भीतर कवि सत्ता का स्युरण है।

4. चौथा वर्ग कहता कि कल्पना/परिकल्पना से ही काव्य का स्वरूप पूर्णता अर्जित करता है।

5. तन्मयी भवन योग्यता यानी सभी अनुभूतियों को सार्वभौमिक स्वरूप देना।

यहाँ गौर करें कि जहाँ निराला के काव्य हेतु भाव, स्वानुभूति और विचार हैं तथा पंत के काव्य हेतु प्रतिभा और व्युत्पत्ति उसमें भी वे व्युत्पत्ति को अधिक महत्त्व देते हैं।

वहीं महादेवी भी अपने सृजन चिन्तन में प्रतिभा और व्युत्पत्ति को काव्य का प्रमुख प्रेरक तत्त्व मानती है। वे लिखती है कि– *साहित्य सृजन केवल रूचि, इच्छा, विवशता का परिणाम नहीं है, क्योंकि उसके लिए एक विशेष प्रतिभा और उसे संभव करने वाले मानसिक गठन की आवश्यकता होती है।*[11] उल्लेखनीय है कि यह जो मानसिक गठन है वह जन्मजात नहीं होता, वह संस्कार प्रेरित होता है। पद्मसिंह शर्मा कमलेश पर में लिखती हुई कहती हैं कि *सच्चा कलाकार लोक हृदय को पहचाने बिना नहीं रह सकता। जो लोक हृदय को पहचानता है, वही अमर होता है। जनता भी उसे ही जीवित रखती है।*[12] यह जो लोक हृदय से लोकदर्शन है वही व्युत्पत्ति यानी बहुज्ञाता है जिसका वे जोरदार समर्थन कर रही है। क्योंकि लोक साक्षात्कार से ही कवि की प्रतिभा और अनुभव सम्पन्नता परिवर्धित परिश्कृत होती रहती है।

इसी प्रकार अभ्यास के लिए वे कहती हैं कि *अभ्यास मात्र से उत्कृष्ट साहित्य सृजन संभव है।*[13] हालांकि अपने आगे के कथन में वे वैज्ञानिक युग में इसकी अस्वीकार्यता का उल्लेख भी करती है यानी वे अभ्यास को कारण तो मानती है, पर काव्यशास्त्रीय पदावली में हेतु नहीं। प्रतिभा की कमी को वे लोकदर्शन का रास्ता सुझाती है। लेकिन प्रतिभा और व्युत्पति का एक साथ अभाव और केवल अभ्यास उन्हें कतई मान्य नहीं।

काव्य प्रयोजन

प्रयोजन यानी उद्देश्य। यानी कवि अभीष्ट वस्तु प्राप्ति की कामना। वही प्रयोजन उद्देश्य या लक्ष्य कहा जाता है। कवि जिस प्रेरणा से काव्य सृष्टि करता है अथवा जिस उद्देश्य से काव्य सृष्टि करता है, ऊपरी तौर पर देखने से ये दोनों वाक्य एक से लगते हैं, पर काव्यशास्त्र में प्रेरणा (Impulse) तथा उद्देश्य (Purpose) का विश्लेषण अलग–अलग है। वहाँ प्रेरणा से तात्पर्य है काव्य सृजन हेतु आंतरिक

व्याकुलता और उद्देश्य से अर्थ है सृजन के माध्यम से विशेष फल की इच्छा। यानी एक आंतरिक विकलता है और दूसरा फल प्राप्ति। आचार्य भरत मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक की हमारी काव्यशास्त्रीय परम्परा से गुजरने पर कहा जा सकता है कि लोकहित (लोकमंगल) और लोक रंजन (आनंद) ही काव्य का चरम प्रयोजन हैं। इस दृष्टि से महादेवी वर्मा का कथन मनन योग्य हैं –

साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन से बाहर स्वच्छन मानव–स्वभाव में, उसकी युक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है।[14]

यानी वे एक साथ कवि और सह्रदय की दृष्टि से इस पर विचार करती हैं। कवि को तो स्वान्तः सुखाय और यश मिलता है, पर सह्रदय को भी लोक जीवन को समझने का अवसर मिलता है। ध्यान रहे उनके यहाँ स्वान्तः सुखाय आत्म परिष्कार जैसा ही है। वे लिखती हैं–*अपने सृजन से साहित्यकार स्वयं भी बनता है क्योंकि उसमें नये संवेदन जन्म लेते हैं,नया सौन्दर्य बोध उदय होता है और नये जीवन दर्शन की उपलब्धि होती है।*[15] यानी उनके काव्य प्रयोजन में कवि को भाव संवेदना, सौन्दर्य, बोध और जीवन दर्शन का त्रिक आधार स्वरूप मिलता है।

जहाँ निराला आनंद और लोक मंगल को और पंत आंतरिक प्रयोजन को अधिक महत्त्व देते हैं वहीं महादेवी दोनों क्रमशः आंतरिक एवं बाह्य प्रयोजनों पर ही अपना स्पष्ट मत व्यक्त करती हैं। इतना ही नहीं उन्होंने काव्य के बाह्यप्रयोजनों पर भी विचार किया यथा– यश और अर्थ प्राप्ति। लेकिन यश प्राप्ति का तो वे पूर्ण समर्थन करती है, पर अर्थ प्राप्ति को लेकर वे असहमति के छोर पर हैं। उनका स्पष्ट मत है कि *यदि साहित्य की आजीविका की दृष्टि से स्वीकृत कोई एक व्यापार मान लिया जाए, तो न व्यक्ति की प्रतिभा विशेष के लिए मुक्त क्षितिज मिल सकता है और न उक्त कर्म से उनके अविच्छिन्न लगाव को उचित ही कहा जा सकता है।*[16] वे कवि सम्मेलनों में भाग लेने वाले कवियों के अर्थ लोभ की निन्दा करती है। जाहिर है कि धन की प्रेरणा से निश्चय ही कवि स्वतंत्रता बाधित होगी। फलस्वरूप रचना सर्वजन संवेद्य नहीं हो पाएगी।

काव्य के तत्त्व

काव्य तत्त्व को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में पर्याप्तचिन्तन मनन हुआ है। काव्य तत्त्व ही काव्य का मूल अस्तित्व हैं। भारतीय परम्परा में रस, आनन्द, अनुभूति, रमनीयता, व्यंजना आदि कई तत्त्वों की महत्ता को विस्तार से व्याख्यायित किया गया है, वहीं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इनकी संख्या चार हैं – भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली।

हम यह तो जानते ही हैं कि दरअसल में शब्द हमारे अनुभव, मनोवेग और कल्पना के मूर्त रूप होते हैं। हमारी बुद्धि काव्य में सत्य और शिव की रक्षा करती है। कोई भी तत्त्व अपनी उपस्थिति–अनुपस्थिति में काव्य की संवेदना को प्रभावित कर सकता है। अतः इनका सम्यक् संतुलन कवि के लिए अनिवार्य है।

जहाँ निराला काव्य तत्त्व को प्राण से जोड़ते हैं और पंत राग की प्रधानता को स्थापित करते हैं वहीं महादेवी के लिए अनुभव/लोकसत्य ही कविता का प्रमुख भाव है। क्योंकि कवि अपने व्यक्तिगत अनुभवों के बल पर ही तो समाजोपयोगी सत्य को वाणी देता है। इसी अनुभव वैविध्य से सत्य के दो रूप हो जाते हैं एक वह जो पहले से विद्यमान है, दूसरा जो संभाव्य है। वे बुद्धि तत्त्व को हृदय से जोड़कर देखतीं हैं। इसके अतिरिक्त के सौन्दर्य के महत्त्व को सत्य के साथ उसके सम्बन्ध से जोड़कर देखती हैं। वे स्पष्ट लिखती हैं कि *सत्य काव्य का साध्य है और सौन्दर्य साधन। एक अपनी एकता में असीम है और दूसरा अपनी अनेकता में अनंत।*[17] यहाँ यह जानना संगत रहेगा कि कविवर रवीन्द्रनाथ ने तो सत्य की उपलब्धि से ही सौन्दर्य की प्राप्ति को श्रेयकर माना है जबकि महादेवी के समकालीन प्रकृति कवि पंत ने सौन्दर्य को काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार किया है। लेकिन वे सौन्दर्य भी अनुभवप्रसूत ही मानती है। अपनी मौलिक सूझ–बूझ में वे इस प्रश्न को भी तर्क युक्त उत्तर देती चलती है कि व्यापक सत्य के (रूप–कुरूप) विभिन्न रूपों में से सौन्दर्य किससे ग्रहण करें? वे लिखती हैं कि *सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएँ जिस सौन्दर्य का सहारा लेती है वह जीवन की पूर्वतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है केवल बाह्य रूपरेखा पर नहीं।*[18]

काव्यात्मा

हमारी संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा में काव्य के उपादान रूप में शब्द और अर्थ को निर्विकार स्वीकार किया गया है। पर सांसारिक कार्य व्यवहार एवं काव्य दोनों में ही प्रयुक्त शब्द व अर्थ अपना–अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। काव्य के शब्द और अर्थ अधिक वैशिष्ट्यपूर्ण या कहें चमत्कारी कहे–माने जाते हैं। प्रश्न उठता है कि यह वैशिष्ट्य क्या है? इस प्रश्न पर काव्यशास्त्र में एक लम्बी संवाद परम्परा रही। आचार्यों ने शब्द व अर्थ को काव्य शरीर के रूप में ग्रहण किया और विशिष्टता को जिसके चलते या कारण काव्य काव्यत्व अर्जित करता है, उसे काव्य की आत्मा कहा। काव्यशास्त्रीय परम्परा में मुख्यतः छह सिद्धान्त प्रचलित–स्वीकृत है – 1. रस, 2. अलंकार, 3. रीति, 4. वक्रोति, 5. ध्वनि, 6. औचित्य।

आंशिक रूप से तो महादेवी के सृजन विश्व के इन छहों के पदचिह्न देखे–खोजे जा सकते हैं, पर रस व ध्वनि का सम्बन्ध विशिष्ट के साथ घनिष्ट भी है। प्रश्न उठता है कि महादेवी का काव्य में नवरस में से किस रस की प्रधानता से सम्पन्न है? हालांकि वे अपने लेखन में भवभूति के करुण रस का उल्लेख सन्दर्भानुसार बहुताधिक करती है। स्पष्ट रूप से तो रस सम्बन्ध में वे अपने विचार को भले ही प्रकट न करती हों, पर काव्यकला निबन्ध में वे कहती हैं कि *काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योंकि सत्य काव्य का साध्य है और सौन्दर्य उसका साधन*। ध्यान दीजिए ज्ञान को सहायता शांति से मिलनी संभव है। साथ ही शांतरस से संपन्न काव्य में विचार साध्य एवं भाव व अनुभूति साधन मात्र रहते हैं, वहाँ सौन्दर्य के स्थान पर अंततः सत्य की अभिव्यक्ति का ही लक्ष्य रहता है। अतः इस दृष्टि से अप्रत्यक्षरूप से महादेवी के काव्य में शांत रस ही केन्द्र में है। सत की दृष्टि से उनके काव्य में प्रणय, विरह का आधिक्य जरूर है, पर फिर भी उन्हें श्रृंगार रस की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता।

हम देखते हैं कि जहाँ निराला और पंत रसवादी है वहीं महादेवी में रस व ध्वनि का विशेष आग्रह उन्हें परम्परा से अलगता है, विशिष्ट बनाता है। उनमें वाच्यार्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ का निरूपण है। पश्चिम की शब्दावली में कहें, तो शांत और ध्वनि को क्रमशः औदात्य की व्यंजना और प्रतीक योजना भी कहा जा सकता है। यानी महादेवी भी रसवादी हैं, शांत उनके काव्य में प्रयुक्त हुआ प्रमुख रस है और ध्वनि को भी वे अन्य की तुलना में विशेष महत्त्व देते हुए सहकारी अंग के रुप में स्वीकार करती हुई अपनी रचनात्मक यात्रा में आगे बढ़ती हैं।

काव्यरूप : (गीति)

साहित्यशास्त्र में काव्यरूप मुख्यतः तीन कहे, माने जाते हैं– 1. प्रबन्ध, 2. गीति 3. मुक्तक। पहला प्रश्न तो यही उठता है कि कवि इनमें से किसी एक का चयन किस कारण करता है? इच्छा/रूचि या अन्य कोई कारण? कईं कवि दोनों शैलियों यथा प्रबन्ध व मुक्तक का उपयोग भी करते हैं। क्यों ? यथा – तुलसीदास।

विचार, कल्पना और भाव तीनों ही मानव मन की सहज प्रवृत्तियाँ हैं। पर सबमें इनका अनुपात एक–सा नहीं रहता। यानी कवि व्यक्तित्व का पहला व मूल आधार है स्वइच्छा जिसके कारण वह किसी एक रूप का चयन अपनी अभिव्यिक्त के लिए करता है। तुलसीदास की परम्परा में प्रसाद ने भी एकाधिक काव्यरूपों का प्रयोग किया है। काव्यरूप का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार वस्तु को कहा–माना जा सकता है। जैसे इतिवृत्त, घटना विवरण के लिए प्रबन्ध, भावानुभूति के लिए गीत। इसके अतिरिक्त कवि प्रयोजन का भी इससे गहरा सम्बन्ध है। प्रायः महान चरित्र, उच्च आदर्श का रूपांकन प्रबन्ध में, निजी भावानुभूतियों की निर्बाध अभिव्यक्ति के लिए गीति रूप अधिक ग्राह्य है। किसी एक दृश्य, चित्र या अनुभूति के लिए मुक्तक। स्वयं कवयित्री महादेवी ने गीतिकाव्य रूप का सर्वोत्त्कृष्ट रूप हिन्दी के सामने रखा है। वे लिखतीं हैं कि *सुख–दुःख की भावावेशमयी अवस्था–विशेष का गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना का उपयुक्त*

चित्रण कर देना ही गीत है।[19] यानी वे गीतिकाव्य के चार तत्त्व या लक्षण स्वीकार करती हैं–

1. भावावेशमयी अवस्था विशेष – भावनात्मकता

2. स्वर साधना के उपयुक्त – संगीतात्मकता

3. गिने–चुने शब्दों में – संक्षिप्तता

4. उपयुक्त चित्रण – भावानुकूलत भाषा का प्रयोग

स्पष्ट है कि इसमें व्यैक्तिकता नहीं है क्योंकि वे उसे महत्त्वपूर्ण तो मानती हैं, पर अनिवार्य नहीं। उदाहरण –

यहाँ दृष्टव्य है कि जहाँ निराला में मुक्त छन्द को महत्त्व है, पंत में आत्मलीनता के साथ प्रभाववर्धन करने वाली लोक चेतना को अधिक महत्त्व है वहीं महादेवी का पूरा जोर गीति पर है।

निशा की धो देता राकेश

चाँदनी में जब अलकें खोल।

कली से कहता था मधुमास

बता दो मधु मदिरा का मोल

यह गीत विरह दशा का सम्पूर्ण चित्र है।

इसी तरह उनकी करुणा भी करुण की पोषक कम है। वह अन्त में शांत रस में ही परिणत होती है। साथ ही शेष भाव भी शांत के अंग सिद्ध होते हैं। यथा –

मत व्यथित हो फूल! किसको

सुख दिया संसार ने?

स्वार्थमय सबको बनाया –

है यहाँ करतार ने

** ** **

जब न तेरी ही दशा पर

दुःख हुआ संसार को,

कौन रोयेगा सुमन!

हमसे मनुज निःसार को?

इसमें करुण भाव प्रारंभ से संचारी होकर सामने आता है, परन्तु उसकी परिणति शांत के स्थायी तत्त्व में ही हो रही है। रहस्यानुभूति, प्रणयानुभूति, करुणा, वेदना, निर्दैव, प्राकृतिक सौन्दर्य इन सभी के मूल में तत्त्वबोधजन्य अनुभूति ही सक्रिय है। अतः हम कह सकते हैं कि उनका सम्पूर्ण रचना संसार शांतरस से परिपूर्ण है।

जानकार विद्वानों ने कहा है कि भाव जो रस है, कल्पना जो ध्वनि है और औचित्य जो विचार है– का सौन्दर्य ही काव्य है। इस में भी रस ही सबसे अहम् है क्योंकि उसमें ध्वनि और औचित्य का पर्यवसान हो जाता है। ध्वनि के व्यंजार्थ द्वारा सामान्य अर्थ के स्थान पर उससे भिन्न अर्थ की (प्रतीकार्थ) की प्रतीति होती है। जहाँ भिन्न अर्थ सामान्य से सुन्दर होता है वहाँ ध्वनि का अस्तित्व माना जाता है। महादेवी अपने काव्य में अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत या कहें कि लौकिक के जरिये अलौकिक को अभिव्यक्त एवं प्रतिष्ठ करती रहती हैं। अतः उनके काव्य में ध्वनि का सौन्दर्य प्रमुखता से उभरा है–

विस्तृत नभ का कोई कोना

मेरा न कभी अपना होना

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी थी कल मिट आज चली।

यहाँ बदली के माध्यम से व्यक्तित्व की व्यंजना की गई है। इसमें व्यंग्यार्थ देखने योग्य है।

कहाँ गौर किए जाने योग्य तथ्य यह है कि गीत में आत्मानुभूति की बात वे पहली बार नहीं कर रही हैं, पर उसमें हृदय और बुद्धि तत्त्व का निर्वाह करने की और छायावादी कवियों में वे पहली हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोकगीत की भी व्याख्या प्रस्तुत की है। वे श्रेष्ठ गीत और लोकगीत को अभिन्न मानती है। *यदि हम भाषा, भाव, छन्द आदि की दृष्टि से लोकगीत और काव्यगीतों की सहृदयता के साथ परीक्ष करें, तो दोनों के मूल में एक–सी प्रवृत्तियाँ मिलेंगी।*[20]

काव्य वर्ण्य

महादेवी की कविता में ही नहीं गद्य में भी मानव जीवन की सामन्यस्यपूर्ण अभिव्यक्तिके साथ–साथ अध्यात्म निरूपण की भी स्पष्ट उपस्थिति परिलक्षित की जा सकती है। वे मानतीं हैं कि सीमित विषयों पर की गई रूढ़िगत रचनाएँ किसी कवि को आगे नहीं ले जा सकती। किसी भी कवि के लिए भाव–वैविध्य और सार्थक रस चेतना का निरन्तर प्रवाह परमावश्यक है। अन्यथा अभिव्यक्ति में एकरसता का आना सहज व स्वाभाविक ही है। वे लिखतीं हैं कि *यदि हम पहले मिली सौन्दर्य दृष्टि और आज की यथार्थ–सृष्टि का समन्वय कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निगध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना की व्यापक मानवता में प्राण–प्रतिष्ठा कर सकें, तो जीवन का सामन्यरूप पूर्ण चित्रण दे सकेगा।*[21]

छायावादी काव्य में आध्यात्मिकता के समावेश की नवीन भूमि प्रस्तुत करने वालों में पन्त के साथ महादेवी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। लेकिन पंत की आध्यात्मिकता जहाँ मानववाद से प्रेरित रही, वहीं महादेवी की आध्यात्मिकता में लोक या कहें लौकिक प्रणय रूपकों की उपस्थिति उन्हें विशिष्ट बनाती है।

स्पष्ट है कि काव्य वर्ण्य को लेकर महादेवी ने अपने चिन्तन में पूरी सजगता के साथ विचार कर इस विषय के विमर्श को आगे बढ़ाने की सार्थक कोशिश की है।

निष्कर्ष :

महोदवी विगत डेढ़ शताब्दी में उभरी हिन्दी की एक बेमिसाल रचनाकार हैं। वे केवल कवयित्री ही नहीं थीं, वे गद्‌यकार, विचारक, चित्रकार, अनुवादक, शिक्षक और सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी रहीं।

काव्य चिन्तन उनकी लेखन यात्रा में बहुत व्यवस्थित रूप से तो नहीं आता, पर समग्र से गुजरने पर एवं वृत्ताकार पठन क्रिया से हम कुछ सूत्र अवश्य ही प्राप्त कर सकते हैं।

1. काव्यशास्त्र के आधार बिन्दुओं पर उन्होंने न केवल सोचा–विचारा ही, साथ ही उन्हें नवीन या कहें अपनी मौलिक सूझ–बूझ से पुनः व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया। यथा – काव्यकला में सत्य की प्रधानता स्वीकार करने वाली एकमात्र रचनाकार हैं। वे सत्य की उपलब्धि में ही सौन्दर्य को श्रेयकर मानती हैं।

2. उनके चिन्तन में भावुकता और आलोचनात्मकता के हुनर का समन्वय है।

3. छायावादी काव्य में रहस्यवादी आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आग्रह करना भी उनकी एक विशिष्ट देन है।

4. वे अभ्यास की तुलना में प्रतिभा व व्युत्पति को अधिक महत्त्व देती है।

5. स्वान्तः सुखाय को आत्मपरिष्कार के रूप में देखना उनकी मौलिक सूझबूझ है।

6. वे प्रमुख रूप से शांत रस व ध्वनि के व्यंजनार्थ की रचनाकार हैं।

7. अनुभवजन्य आत्मानुभूति ही उनके लिए सहज काव्य है।

कई आलोचक उनके काव्य में दोहराव या विशिष्ट शब्दों–पदों की पुनरूक्ति पर प्रश्न उठाते रहे हैं। उनकी जानकारी में होना जरूरी है कि महादेवी की काल चेतना वृत्ताकार काल दर्शन से युक्त है, इसमें जो जाता है, वह फिर–फिर लौटकर आता है, अतः इसे दोहराव नहीं कहा जा सकता। यह तो सनातन चेतना प्रवाह है।

उनके समस्त आलोचनात्मक लेखन को दो बीज शब्दों के माध्यम से देख–समझा जा सकता है वे हैं सामन्जस्य और समन्वय।

सारतः जीवन के मूलभूत विश्वासों पर खड़ा उनका काव्य संसार अन्तर्मूल्य और अन्तर्दृष्टि में अविरोध का संसार है। आकार में छोटे रचे गीत मानवीय मनःस्थिति की संपूर्णता के सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। परम्परा के प्रति सजग, चौकस रहने वाली इस रचनाकार का साहित्य आत्मचिकित्सा का–सा व्यापार है। एक ओर उनका काव्य परिसर जहाँ वेदनानुभूति, रहस्यात्मकता, प्रणय और सौन्दर्य पर खड़ा है वहीं उनका समूचा सौन्दर्यशास्त्र प्रेम, संगीत और कलात्मकता की नींव पर खड़ा है। अपनी सीमाओं का बोध उन्हें भली–भाँति है। इसलिए व्यर्थ का विस्तार उनके यहाँ नहीं है। इसी कारण वे अपने समय का एक विशिष्ट आकर्षण रहीं। उनका भाषिक व्यवहार हिन्दी के स्वाभिमान को तो बढ़ाता ही है, साथ ही उसे अपने पैरों पर भी खड़ी करने में मदद करता है। उनमें सूर्य होने का अभिमान नहीं है, वे खद्योत–सी हठधर्मिता से अपने रचनात्मक कार्य–व्यापार को आगे बढ़ाती हैं। अस्तु, वे हमारी हिन्दी स्मृति का मूल्यवान रत्न हैं और रहेंगे भी।

सन्दर्भ –

1. श्रोत्रिय प्रभकर, कवि परम्परा, सं तीन–2016, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.1
2. सिंह दूधनाथ, सात भूमिकाएँ सं. 2013, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 12
3. गिल गगन (संपादन), देह की मुँडेर 2019, वाणी प्रकाशन, पृ.सं .56
4. श्रीधर, महादेवी वर्मा और आलेचना का मर्दवादी जाल, समालोचन, 26 मार्च, 2019
5. शर्मा, रामविलास, परम्परा का मूल्यांकन, 2004, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.12
6. साही विजयदेवनारायण, छठवाँ दशक, 1987, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.303
7. सदायत चन्द्रा (संपादन), लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा, 2017, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पृ.सं.57
8. सिंह दूधनाथ, सात भूमिकाएँ, 2013, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 47

9. सिंह दूधनाथ, सात भूमिकाएँ, 2013, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 59

10. सिंह दूधनाथ, सात भूमिकाएँ, 2013, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 63

11. चौधरी इन्दुनाथ, भारतीय काव्यशास्त्र का विवेचनात्क संक्षिप्त इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल, पृ.सं. 24

12. गुप्त सुरेशचन्द्र, हिन्दी काव्यशास्त्र : कवियों की अवधारणाएँ, 1986, ग्रंथ अकादमी, दिल्ली, पृ. सं. 334

13. सुमन क्षेमचन्द्र, जैसा मैंने देखा, शंकर प्रकाशन, अलीगढ़, पृ. 140

14. गुप्त सुरेशचन्द्र, हिन्दी काव्यशास्त्र : कवियों की अवधारणा, 1986, ग्रंथ अकादमी, दिल्ली पृ.सं. 334

15. वर्मा महादेवी, आधुनिक कवि भाग–1, भूमिका, 1942, शंकर प्रकाशन, अलीगढ़, पृ.सं. 10–11

16. वर्मा महादेवी, आधुनिक कवि भाग–1, भूमिका, 1942, शंकर प्रकाशन, अलीगढ़, पृ.सं. 59

17. सिंह दूधनाथ, सात भूमिकाएँ, 2013, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 59

18. पाण्डेय गंगाप्रसाद, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, 1944, इण्डियन प्रेस, पृ.सं. 08

19. गुप्त गणपतिचन्द्र, महादेवी : एक नया मूल्यांकन, 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ.सं. 326

20. वर्मा महादेवी, यामा अपनी बात, 2006, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं. 07

21. पाण्डेय गंगाप्रसाद, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, 1944, इण्डियन प्रेस, पृ.सं. 172

22. पाण्डेय गंगाप्रसाद, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, 1944, इण्डियन प्रेस, पृ.सं. 77